Written by विकास मिश्र
Thursday, 31 March 2011 18:28

: □□□□□□ □□□□□ □□□□□□ □□□□□, □□□□ □□□□□□ □□ □□□□..... : □□□□ □□□□□ □□ □□□□ □□, □□□□□□□□ □.. : □□□□ □□□ □□ □□□□□ □□□□□ □□□□ □□□□□ □□□□□.:.करीब 15 साल बाद होली पर गांव गया था□ वजह सिर्फ व्यस्तता ही नहीं रही, जहां रहा, वहां ये रंगीन त्योहार साथियों के साथ मनाने का भी अपना लुत्फ था□

जाट देवता की मेहरबानी से ट्रेन कैंसिल हुई, लिहाजा बस से गया, लेकिन गांव की होली की जो तस्वीरें चस्पा थीं, वो सफर में ही ताजा हो गईं□ सफर आसानी से कट गया□ होलिका दहन वाली शाम को गांव पहुंचा था□ काली माई के थान के पास हर साल होलिका दहन होता है□ पहले तो हम इसे सम्मत मइया के नाम से ही जानते थे□ गांव की तरफ मुड़ते ही सम्मत मइया पर नजर पड़ी□ बहुत दुबली हो गई थीं सम्मत मइया□ पहले तो हमारे गांव की सम्मत (होलिका) पूरे इलाके में मशहूर होती थी□ बड़े हम लोगों की पीठ ठोंकते थे और हम सब जुट जाते थे सम्मत मइया को सबसे बड़ी करने में□ बच्चों की टोली हर घर से पांच गोइठा (बड़े साइज का उपला) मांगने जाती थी□ हर घर के सामने जाकर बच्चे □क सुर में गाते थे--अपने भतारे के मउसी हो, पंचगोइठी द..□

होली के पहले तो सभी गलियां ठिठोली बन जाती थीं□ हर घर की महिला हंसते हंसते पंचगोइठी देती थी□ पहले तो गोइठा का ही अम्बार लग जाता था□ फिर किसी का छप्पर, किसी के भुसौले की टाटी, लाकर सम्मत मइया के हवाले कर दी जाती थी□ बाग में पड़े लकड़ी के मोटे मोटे-बोटे भी डाल दि□ जाते थे□ □क बार तो मैंने शीशम का पूरा पेड़ ही होलिका में डलवा दिया था□ घर में खूब डांट पड़ी थी, लेकिन नियम था कि □क बार जो चीज सम्मत मइया के हवाले हो गई, उसे निकाला नहीं जा सकता□ हर साल □क दो लोग अपने घर का छप्पर खुद सम्मत में डाल देते थे, इसके पीछे यकीन ये था कि सम्मत मइया की कृपा से छप्पर का मकान खपरैल का हो जा□गा..□ ज्यादा कृपा हो गई तो लिंटर भी लग सकता है□

खैर, ये तो बीते दिनों की बात थी, सामने सम्मत मइया उतनी ही बड़ी दिख रही थीं, जितना बड़ा हमारे घर के बाहर ठंड के दिनों में कौड़ा जल जाता था□ गांव में पहुंचते ही बचपन जाग गया, बच्चों को इकट्ठा किया, कुछ कोशिशें हुईं, सम्मत मइया थोड़ी मोटी हुईं, और जल भी गईं□ लपटें उठीं, पहले की तरह पूरा गांव तो नहीं जुटा था, फिर भी ठीक-ठाक लोग जुट ग□ थे□ होलिका जली, अपने अपने नाप का मूंज तोड़ तोड़कर होलिका में फेंका जाने लगा□ शाम को जो उबटन लगी थी, उबटन छुड़ाने के बाद जो बचा हुआ हिस्सा था, उसे भी होलिका के हवाले कर दिया गया□ मेरे अचरज का ठिकाना नहीं रहा, क्योंकि लोग अपने अपने घर की तरफ रवाना होने लगे□ क्योंकि पहले तो होलिका दहन के बाद कबीरा होता था, फगुआ गाया जाता था□ छोटेलाल प्रधान फगुआ के अगुवा हुआ करते थे□ मैंने उनसे पूछा तो बोले- बाबू अब कहां फगुआ गाया जाता है, कोई तैयार ही नहीं होता□ मैंने कहा- आप तैयार हैं□ छोटेलाल तैयार हु□, मसाक भाई ढोलक लेकर आ ग□□ फगुआ शुरू हुआ..□ रस्म अदा हो गई□ पता चला कि गांव में तीन साल बाद फगुआ गाया गया□

मुझे अच्छी तरह याद है कि पहले होलिका दहन के तीन चार घंटे तक धमाल चलता था□ हमारे गांव की होलिका मशहूर थी, इलाके में शोर था कि बरवां क सम्मत सौ पुरुसा (बरवां गांव की होलिका की लपटें सौ पुरुषों की ऊंचाई के बराबर जाती हैं)□ दो दिनों तक तो आग बुझती भी नहीं थी□ उपले सुलगते रहते थे□ बड़ों की टोली फगुआ गाती थी, गांव के बच्चे कबीरा के नारे लगाते थे.. सम्मत मइया को तरह तरह के विभूषणों से विभूषित किया जाता था□ सुबह नींद खुलती थी तो हंगामे के साथ□ होलिका की राख गमछे में भरकर लड़के सुबह से ही ऊधम काटना शुरू कर देते थे□ पहली होली राख के साथ□ यानी शुरुआत जीवन के आखिरी सच के साथ□ सबको □क दिन राख होना है, तो प्रेम का त्योहार इसी राख के साथ शुरू होता था□ फिर कबीरा टोली इकट्ठा होती थी□ गांव में 70 फीसदी आबादी मुस्लिमों की है□ कबीरा टोली में भी उनकी हिस्सेदारी 70 फीसदी से कम नहीं रहती थी□ मसाक भाई, असीन भाई, पुद्दन,

शराफत, तकीन, अमीन, कोईल भाई, झिन्ना चाचा कबीरा के मास्टर थे। करीब 20 लोग गाने वाले और उनके पीछे गांव के नवयुवकों की टोली। पहला कबीरा मेरे घर पर होता था।

झाबर काका गांव में सबसे बुजुर्ग थे। मेरे घर पर वो मेरी मां को संबोधित करके कबीरा गाते थे। मां भीतर से बाल्टी भरकर रंग फेंकती थी। झाबर काका पूरी तरह भीग जाते थे। फिर ये टोली भांग छानती थी वो भी गाते बजाते। भांग पीसने में बारी काका का कोई जोड़ नहीं था। वे बड़े मन से भांग पीसते थे, लेकिन खुद भांग नहीं खाते थे। खैर, भांग छानने के बाद पूरी टोली निकल पड़ती थी गांव के घर घर..। किसी के घर पर पहुंचते ही टोली में जोश आ जाता था, कबीरा और रंगीन हो जाता था। टोली के नायक होते थे पतिराज भाई। गांव के रिश्ते नाते हैं। पतिराज भाई जिंदगी में कभी पति नहीं बन पाए, शादी नहीं हुई, होली पर सिर्फ पतिराज भाई को ही शराब पीने की इजाजत थी, क्योंकि भांग उन्हें सूट नहीं करती थी। पतिराज भाई के सिर पर एक टोपी हुआ करती थी। टोपी भी कोई मामूली नहीं। ढकिया का पिछवाड़ा काटकर उनकी टोपी बनती थी। हाथ में एक डंडा होता था। जिसे शरीर के विभिन्न भागों में घुमाते हुए पतिराज भाई नाचते थे। इसी नाते उनका दूसरा नाम नाचन भी पड़ गया था। होली में कभी पतिराज भाई नाचते हुए थके नहीं। तो होता यही था कि पतिराज भाई नाचते और पूरी टोली झमाझम कबीरा गाती।

-□□□□□□ □□□□□ □□□□□□□ □□□□□□, □□□□ □□□□□□□ □□ □□□□.....□

-□□□□□ □□□□□ □□□□□□□□ □□□□□□.... □□□□□□□ □□□□ □□□□□ □□□□□□□..□

((कैसे कैसे मैं निकलूं आंगने मोरा भइया दुअरवा ठाढ़ बाजा बाजेला।))

घर की महिलाएं भउजाइयां, काकियां कीचड़, गोबर की बारिश करतीं, तो कबीरा और भी जोर पकड़ लेता था। सलीम चाचा को कबीरा नहीं पसंद था, इसी नाते उनके घर पर और भी कबीरा होता था, झिन्ना चाचा लहराकर बोलते...सलीम बहू जब अइलनि गवनवा पतरे पीढ़ा नहायं...। इसके आगे पीढ़ा फिसलने का हादसा है...अक्षरों में इन्हें ढालेंगे तो अश्लीलता का इल्जाम मिल जाएगा। इन्हें त्योहारी रंग ही रहने दीजिए।

कबीरा टोली के घर-घर घूमते घूमते दोपहर के दो बज जाते थे। फिर पूरा गांव जाता था नदी नहाने। गाय, बैल, भैंस, बकरी, सभी का नदी स्नान होता था। बाबूजी सुबह ही खली भिगवा देते थे। उस दिन खली लगाना अनिवार्य होता था। रंग भी उतर जाता था और त्वचा भी नम रहती थी। फिर लौटकर भोजन पानी। दूसरी पारी में रंग और अबीर की होली होती थी। शाम ढलने से पहले सब मेरे घर पर इकट्ठा होते थे। फगुआ होता था, फिर पंडित काका पत्रा निकालकर नए संवत्सर का फल बताते थे। सबको उत्सुकता ये जानने की होती थी कि इस साल बारिश होगी कि नहीं, होगी तो कैसे होगी। इस फलादेश के बाद फिर ठंडाई छनती थी, रात नौ-दस बजे तक ढोलक, मजीरे के ताल पर फगुआ चलता था। सुबह का फगुआ संभोग श्रृंगार रस में होता था। गड़े अरहरिया क खूंटी हो पिया दोहर बिछा द... जैसे बोलों वाले फगुआ से शुरुआत होती थी, रात होती थी नंदलाल के होली वर्णन से।

होलिका की रात तो रस्म पूरी हो गई, मुझे भी सुबह का इंतजार था। बहुत कुछ बदल गया था। झाबर काका का बरसों पहले निधन हो गया था। झिन्ना चाचा और पंडित काका भी नहीं रहे। पतिराज बहुत बूढ़े हो गए हैं। 75 साल की उम्र हो चुकी थी। पता ये भी चला था कि फगुआ ही नहीं चार साल से गांव में कबीरा भी नहीं हुआ। होलिका दहन वाली रात में ही मैंने ताकीद कर दी थी कि इस बार कबीरा जरूर होगा। मैं खुद चलूंगा घर घर..। बात का असर हुआ।

सुबह राख फेंकने बच्चे और नौजवानों की टोली तो नहीं आई, हां आधा दर्जन लोग जुट गए। पहले हमारे घर पर कबीरा हुआ और फिर टोली गांव की तरफ चल निकली। ढोल मजीरा, कबीरा सब चल रहा था। गायक इससे खुश थे कि उनकी कला चार साल बाद बाहर आ रही थी। मोतीलाल, पहरू, रामप्रसाद, मसाक सपरिवार तो थे ही, नई पीढ़ी के कुछ लड़के भी ये गुर सीख रहे थे। घरों से इस बार कीचड़, गोबर और रंगों की वैसी बारिश तो नहीं हुई, लेकिन कामचलाऊ सब कुछ हुआ।

गांव में प्रधानी के चुनाव के बाद दो फाड़ हो चुका है, लिहाजा कुछ लोगों के घर जाना इस टोली के लिए खतरनाक भी था, वो घर बच गए। दोपहर में घोंघी नदी में नहाने गए। घोंघी मइया को देखकर तरस आ गया। सम्मति मइया की तरह ये भी काफी दुबली हो गई थीं, पानी का रंग मटमैला। पहले तो इतना साफ पानी होता था कि इसे हम लोग चुल्लू में लेकर पी भी लेते थे। लेकिन अब पानी पीने तो दूर की बात, नहाने लायक भी नहीं रह गया था। जैसे तैसे नहाकर वापस घर पहुंचे। खाना पीना हुआ। शाम को फगुआ टोली जमा नहीं हुई, पंडितजी ने पत्रा बांचा, संवत्सर का फल बताया। सब अपने अपने घर चले गए। होली कथा समाप्त हो गई।

होली में जिन रंगों की कल्पना को लेकर यहां मन रंगीन हो रहा था, वो रंग गांव में उड़े हुए थे, लेकिन यहां सिर्फ निराशा ही नहीं थी। गांव थोड़ा रंगीन हो गया है। मनरेगा का पैसा पहुंचा है। हर हाथ में पहुंचा है तो हर हाथ में मोबाइल भी पहुंच गया है। होली की दूसरी रात खिली चांदनी में कुछ पुराने साथियों के साथ गांव घूमने निकला तो रंगीन नजारे दिखे। धोंधे की बीवी छत पर खड़ी होकर मोबाइल पर बात कर रही थी, धोंधवा मुंबई में है, बीवी घर में, जय हो मोबाइल देवता की। तन से तन का मिलन हो न पाया तो क्या, मन से मन का मिलन कोई कम तो नहीं..। हमारे घर झाड़ू बहारू करने वाली भुकुरी की मां भी अपने बेटे से मोबाइल पर बात करती है।

पहले गांव में एकाध घर में रेडियो था, लेकिन अब रेडियो गायब हो गया है। मोबाइल में गाना बज रहा है, सस्ते सेटों में गाना और भी जोर से बजता है। अम्मर भाई ने बताया कि बाबू अब तो लड़के लड़कियों की सेटिंग मोबाइल पर हो जाती है। मिलने की जगह भी तय हो जाती है। पहले खेत सुरक्षित नहीं होते थे, लेकिन अब रात में कोई घर से बाहर नहीं निकलता, लिहाजा प्रेमी दिलों के लिए मिलने की जगहों का अकाल नहीं रह गया है। जोगिया का घर बेशक अभी छप्पर का ही है, लेकिन घर में रंगीन टीवी आ गई है, जब उसके घर के सामने से गुजरे तो वीसीडी पर दबंग फिल्म चल रही है। बल्लू के घर में दूरदर्शन आता है, उसी के सामने पूरा घर बैठा मिला, कुछ पड़ोसी भी। चलो इसी बहाने कुछ मेल मिलाप हो जाता है।

मनरेगा की कृपा से गांव थोड़ा सुंदर हो गया है। गांव के बाहर पोखरा बन गया है, गांव के लड़के नहाते हैं। महिलाएं कपड़े धोती हैं। गांव का स्कूल है। बच्चे दोपहर के खाने के चलते आते हैं, चलिए कुछ नहीं तो अक्षर ज्ञान तो हो ही जाएगा। दयाराम की प्रगति की कहानी उसके आठ बच्चों के रूप में सामने आई है। नौवा बच्चा आने वाला है। दयाराम उम्र में मुझसे एक साल छोटा है, मेरे एक बेटे पर उसने मुझे खूब लानत मलानत भी भेजी। सिंगाड़ा बेचना दयाराम का खानदानी पेशा रहा है। दयाराम के दो साले एक परदेसी और दूसरा कृष्णा। दोनों अपने बीवी बच्चों के साथ गांव में बसे हुए हैं। पिताजी ने थोड़ी जमीन दे दी थी। उसी में रहते हैं। परदेसी की बीवी को प्राइमरी स्कूल में खाना बनाने का काम मिल गया है। साथ में मेरे घर में भी थोड़ा काम कर लेती है। लेकिन घर के पूरे काम काज का जिम्मा कृष्णा और उसकी बीवी के हाथों में है। उसे कुछ खेत दे दिया गया है, कुछ तनख्वाह भी दी जाती है। खैर, शाम को पूरा परिवार था। चाय का इंतजार हो रहा था, कृष्णा की बीवी चाय बना रही थी। उसका ढाई साल का बेटा एक कंघी लेकर बालों में फिराने लगा। उसकी मां ने डांटा- का करत बाटे, कंघी छोड़..। तोतली आवाज में बच्चा बोला--माई हम हीरो बने जात बाटी (मां मैं हीरो बनने जा रहा हूं)..। घर में ठहाका गूंज उठा, मुझे सुकून मिला, चलो बचपन में सपने तो पल रहे हैं।

[illegible], [illegible], [illegible]... [illegible], [illegible], [illegible] '[illegible] 24' [illegible]

15 साल बाद गांव में मेरी होली **:** सम्मति **-**घोंघी मइया का दुबलापन और दयाराम का नौवां बच्चा

Written by विकास मिश्र
Thursday, 31 March 2011 18:28

उनसे संपर्क **vikas.mishra@bagnetwork.in** या **09873712444** के जरिए किया जा सकता है।

4 / 4